नफरत हारी, लेकिन अभी मोहब्बत की जीत बाकी

योगेन्द्र यादव

राजनीति में कौन से बड़ा क्या और क्यों का सवाल होता है। कर्नाटक के चुनाव परिणाम के बाद से मीडिया कौन जीता कौन हारा के सवाल में व्यस्त है। जो दरबारी मीडिया कल तक नरेंद्र मोदी को तुरुप का इक्का बता रहा था, वह अब इस हार के दंश से प्रधानमंत्री को बचाने और इसका ठीकरा पूर्व मुख्यमंत्री बोम्मई और स्थानीय भाजपा नेताओं पर फोड़ने में व्यस्त है। दूसरी तरफ कौन बनेगा मुख्यमंत्री की कवायद शुरू हो गई है।

कर्नाटक के बाद अब राष्ट्रीय स्तर पर विपक्ष के महागठबंधन में किसका कितना वजन रहेगा इसका कयास लगाया जा रहा है, लेकिन राजनीति की दीर्घकालिक समझ में रुचि रखने वालों को अपना ध्यान कौन जीता या हारा से हटाकर क्या जीता, क्या हारा और क्यों जीता, क्यों हारा पर लगाना होगा। खासतौर पर इस बार, चूंकि यह चुनाव महज कर्नाटक की विधानसभा का चुनाव नहीं था, जिससे सिर्फ एक राज्य में अगले 5 साल की सरकार तय होनी थी। इस चुनाव में बहुत कुछ दाव पर था। अगर भाजपा यहां जीत जाती तो 2024 के लोकसभा चुनाव में कांग्रेस और राहुल गांधी के साथ-साथ विपक्ष के लिए भी दरवाजे बंद हो जाते। हमारे गणतंत्र पर हो रहे हमलों का प्रतिकार करना असंभव प्राय: हो जाता।

इस लिहाज से कर्नाटक का चुनाव भारत के स्वधर्म को बचाने के लिए जारी कुरुक्षेत्र के युद्ध का एक महत्वपूर्ण चरण था। नफरत के बाजार में मोहब्बत की दुकान चलाने की जंग का पहला पड़ाव था। चुनाव में कांग्रेस की जीत के बाद राहुल गांधी ने कहा- यह नफरत के बाजार में मोहब्बत की दुकान की जीत है। चुनावी विजय के उत्साह में की गई इस घोषणा में कुछ संशोधन करने की जरूरत है। यह बात तो सच है कि कर्नाटक के चुनाव में नफरत हारी है, लेकिन अभी मोहब्बत की जीत की घोषणा करने का समय नहीं आया। इस चुनाव परिणाम को देखकर इतना दावा तो किया जा सकता है कि महंगाई, गरीबी और बेरोजगारी से जूझ रही जनता को साम्प्रदायिक उन्माद से बरगलाने वाली तिकड़म की हार हुई है।

सौहार्द की संस्कृति के प्रतीक कर्नाटक में कभी हिजाब, कभी अजान, कभी लव जिहाद, तो कभी टीपू सुलतान के बहाने इक्षहदू-मुस्लिम द्वेष फैलाने की रणनीति की हार हुई है। अंतिम घड़ी में बजरंगबली की आड़ लेकर हिंदू भावनाएं भड़काने के ओछे खेल की हार हुई है। यह मिथक एक बार फिर टूटा है कि एक निकम्मी और भ्रष्ट छवि वाली सरकार को आखिरी कुछ दिनों में नरेंद्र मोदी के रोड शो, उत्तेजक भाषणों और चैनलों द्वारा उसके प्रचार से जिताया जा सकता है। लेकिन अभी से यह कहना तो जल्दबाजी होगी कि मोहब्बत की जीत हो गई है।

पहला तो इसलिए कि कर्नाटक की जीत अभी कच्ची है। अभी तो भरोसे से यह भी नहीं कहा जा सकता कि खुद कर्नाटक में अगले साल लोकसभा के चुनाव में कांग्रेस कितनी सीटें जीत पाएगी। दूसरा, इस विजय का सीधा असर पड़ोसी तेलंगाना या इक्षहदी पट्टी के अन्य राज्यों में होने वाले विधानसभा चुनाव पर पड़ेगा इसकी कोई गारंटी नहीं है, पूरे देश के लोकसभा चुनाव में विजय तो बहुत दूर की बात है।

कर्नाटक में भाजपा की हार ने इस लंबी लड़ाई की जमीन को बचाए रखा है। भाजपा शासित प्रदेश में सत्ताधारी दल की इस करारी हार का देश के मिजाज और विपक्ष के मनोबल पर बड़ा असर पड़ेगा। अभी से यह तो नहीं कहा जा सकता कि लोकसभा चुनाव में क्या होगा, लेकिन इतना तय है कि कर्नाटक के इस चुनाव परिणाम ने 2024 में सत्ता पलट का दरवाजा खुला रखा है। जहरीली होती हवा में ऑक्सीजन की मात्रा कुछ बढ़ गई है। यही नहीं, कर्नाटक ने इस दरवाजे तक पहुंचने की राह भी दिखाई है। इस चुनाव में कांग्रेस की विजय के पीछे भाजपा सरकार का निकम्मापन और भाजपा की तुलना में कांग्रेस के नेतृत्व में एकता जैसे सामान्य कारक तो थे ही, लेकिन इस परिणाम की बुनियाद में एक गहरी सामाजिक संरचना भी थी जो पूरे देश के लिए एक मिसाल बन सकती है।

चुनाव परिणाम का विश्लेषण यह दिखाता है कि कर्नाटक के हाशिए पर खड़ा बहुसंख्यक समाज कांग्रेस के पक्ष में लामबंद हुआ। शहरी इलाकों में कांग्रेस और भाजपा का लगभग बराबरी का मुकाबला रहा लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में कांग्रेस को भाजपा के मुकाबले 10 प्रतिशत से भी अधिक वोट मिले। पुरुषों की तुलना में कांग्रेस को महिलाओं के वोट दोगुना से भी ज्यादा मिले। टी.वी. की बहस में चर्चा इक्षलगायत और वोकालिगा वोट बैंक की हुई, लेकिन वास्तव में कर्नाटक के 'अइक्षहदा' वोट यानी पिछड़े, दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यक समाज ने कांग्रेस को जिताया। अगर गरीब- अमीर के हिसाब से देखें तो छोटे-से अमीर तबके में भाजपा को बढ़त मिली लेकिन निम्न, मध्यम, गरीब और अति गरीब वर्ग ने कांग्रेस को बढ़त दिलाई।

अगर समाज एक पिरामिड जैसा है तो इस पिरामिड का शीर्ष भाजपा के साथ रहा और इसका आधार कांग्रेस के साथ। अगर इस मॉडल को सभी विपक्षी दल देश भर में अपना सकें तो 2024 में सत्ता परिवर्तन सुनिश्चित किया जा सकता है। आप कह सकते हैं कि यह सामाजिक समीकरण अपने आप में नफरत की काट नहीं है। अंतिम व्यक्ति वोट भले ही भाजपा को न दे लेकिन उसके मन में सांप्रदायिकता का जहर खत्म नहीं हो जाएगा। यह बात सच है। मोहब्बत की जीत के लिए 2024 के चुनाव में भाजपा की हार जरूरी भले ही हो, लेकिन पर्याप्त नहीं है। मोहब्बत की जीत के लिए लोगों के दिल और दिमाग जीतने होंगे।